

॥ श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ॥

अध्याय 2: सांख्ययोग

5/6 (श्लोक 48-60), शनिवार, 09 दिसंबर 2023

विवेचक: गीता विशारद श्री श्रीनिवास जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: <https://youtu.be/EoGUgl1J5NE>

स्थितप्रज्ञ के लक्षण

प्रार्थना, दीप- प्रज्वलन तथा गुरु वन्दना से आज का विवेचन सत्र प्रारम्भ हुआ। अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को बताते हैं कि कर्म के बन्धन से मुक्त होकर स्थितप्रज्ञ कैसे बन सकते हैं। कर्म करने की योग्यता तो सब में होती है लेकिन उससे मिलने वाले फल की योग्यता निश्चित करने का अधिकार हमें नहीं है।

परीक्षा में बैठने वाला विद्यार्थी परीक्षा के लिए योग्य होता है, लेकिन वह उसके फल को निर्धारित करने के योग्य नहीं होता। कर्म करने की योग्यता और फल निर्धारित करने की योग्यता यह दोनों भिन्न हैं। फल की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए, केवल अपनी योग्यता के अनुसार कर्म करना चाहिए। दिन भर में एक ऐसा कार्य अवश्य करना चाहिए जिसमें कर्तव्य-बोध हो और फल की इच्छा न हो। अकर्मण्यता का सङ्ग नहीं करना चाहिए। कोई भी व्यक्ति कर्म के बिना नहीं रह सकता इसलिए हम हर समय कोई न कोई कर्म तो करते ही रहते हैं, परन्तु उसके फल का अधिकार हमें नहीं है। कोई कर्म हम अच्छा करते हैं और कई बार किसी कर्म में गलती भी हो सकती है। श्रीमद्भगवद्गीता हमें कर्म करने की शिक्षा देती है।

आजकल लोग कोई भी काम अच्छा करते हैं तो उसका स्टेटस अपडेट करते हैं, सेल्फी लेते हैं। अगर आप किसी शहर में रहते हैं तो उसकी साफ-सफाई और स्वच्छता आपका और आपके जैसे दूसरे सब नागरिकों का कर्तव्य है। दिन भर में अगर ऐसे कभी अपने शहर की स्वच्छता के लिए कुछ करते हैं तो कर्तव्य परायण होकर किए अच्छे काम को **कर्मयोग** कहते हैं, लेकिन अगर हम उसे फल की इच्छा से करें कि उसके परिणामस्वरूप कोई नाम और शोहरत मिले तो वह हमारा कर्तव्य शून्य कर देती है।

2.48

योगस्थः(ख) कुरु कर्माणि, सङ्गं(न) त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः(स) समो भूत्वा, समत्वं(यँ) योग उच्यते ॥2.48 ॥

हे धनञ्जय ! (तू) आसक्ति का त्याग करके सिद्धि-असिद्धि में सम होकर योग में स्थित हुआ कर्मों को कर; (क्योंकि) समत्व (ही) योग कहा जाता है।

विवेचन- भगवद्गीता एक ऐसा शास्त्र है जो कर्मयोग सिखाता है। अच्छा कार्य करने पर उसका पुण्यफल और बुरा कार्य करने

पर उसका पाप यह दोनों ही कर्म से आसक्ति को जोड़ती है। कर्मयोग कर्तव्य भाव से किए हुए कार्य से प्राप्त होता है। कर्तव्य भाव फल की अपेक्षा से किए गए काम के प्रत्येक पुण्य और पाप से मुक्ति दिलाता है।

अच्छा कार्य करने पर तालियाँ बजे, अखबार में नाम आ जाए या फिर उससे कोई सम्मान मिले, ऐसी भावना से किया हुआ कार्य आसक्ति पैदा करता है। आजकल लोग कोई भी कार्य करके उसको सोशल प्लेटफॉर्म पर चढ़ा देते हैं, अपनी फोटो अपडेट करते हैं, यह आसक्ति पैदा करता है, फल की इच्छा पैदा करता है। योग में स्थित होकर किया हुआ काम आसक्ति पैदा नहीं करता। समाज सेवा करने वाले लोग पुरस्कार की अपेक्षा रखें तो उनका किया हुआ सारा कार्य शून्य हो जाता है।

कार्य की सिद्धि और असिद्धि कार्य में आसक्ति पैदा करती है। इससे व्यक्ति का मन अशान्त रहता है, विचलित रहता है। अच्छा परिणाम आने पर व्यक्ति अत्यन्त प्रसन्न हो जाता है और उसका बुरा परिणाम होने पर उस व्यक्ति को अविचलता पैदा होती है। योग समता का भाव पैदा करता है, जिसमें सिद्धि और असिद्धि समान है। मन और बुद्धि दोनों ही शान्ति और समत्व के भाव को प्राप्त होते हैं।

2.49

दूरेण ह्यवरं(ङ्) कर्म, बुद्धियोगाद्धनञ्जय। बुद्धौ शरणमन्विच्छ, कृपणाः(फ़) फलहेतवः॥2.49॥

बुद्धियोग (समता) की अपेक्षा सकाम कर्म दूर से (अत्यन्त) ही निकृष्ट है। (अतः) हे धनञ्जय ! (तू) बुद्धि (समता) का आश्रय ले; क्योंकि फल के हेतु बनने वाले अत्यन्त दीन हैं।

विवेचन- स्थिर बुद्धि को रखकर समत्व के भाव से चित्त शान्त हो जाता है। मन और बुद्धि शान्त हो जाती है। निष्काम भाव से किया गया काम अपेक्षा रखने वाले काम से श्रेष्ठ होता है अपेक्षा रखने वाला हमेशा दीन हो जाता है।

प्रभु श्रीराम को गङ्गाजी के पार करवाने वाले केवट की कथा अति प्रसिद्ध है। श्रीराम जी को गङ्गा पार कराने वाला केवट उनसे धन ले सकता था, परन्तु उसने श्रीराम से न कोई धन, न उनकी मुद्रा ली। प्रभु चरणों में माथा टेक कर उसने श्रीराम जी को धन्यवाद किया कि वह उसकी नौका में पधारे। केवट के इस भाव ने प्रभु श्रीराम को भावपूर्ण कर दिया, अतः उन्होंने कहा "आवत जावत रहना"। श्रीराम अयोध्या वापस आते हुए भी केवट को याद करते हुए आए। केवट के इसी भाव ने उसके कर्म को उच्च कोटि का बना दिया। निष्काम भाव से किया हुआ कर्म उसे कर्मयोग बना देता है, यही कर्म और कर्मयोग में अन्तर है। फल की तरफ ध्यान रखने वाला लाचार हो जाता है। फल की आसक्ति उसे फल की तरफ आकर्षित रखती है और फल का ध्यान न रखने वाला कर्मयोगी हो जाता है।

2.50

बुद्धियुक्तो जहातीह, उभे सुकृतदुष्कृते। तस्माद्योगाय युज्यस्व, योगः(ख्) कर्मसु कौशलम्॥2.50॥

बुद्धि-(समता) से युक्त (मनुष्य) यहाँ (जीवित अवस्था में ही) पुण्य और पाप दोनों का त्याग कर देता है। अतः (तू) योग (समता) में लग जा (क्योंकि) कर्मों में योग (ही) कुशलता है।

विवेचन- भगवान् अर्जुन को समझाते हैं कि कर्म करने से और फल की इच्छा न रखने से व्यक्ति कर्मयोगी हो जाता है। अच्छा कार्य करने में भी गलती हो सकती है और बुरा काम करते वक्त भी कुछ अच्छा हो सकता है। किसी भी अच्छे या बुरे में फल की आसक्ति रखना कर्म बन्धन में डालता है।

मन्दिर जाते हुए पैर के नीचे चींटी का आ जाना और उस चींटी का मर जाना पाप है, पर अगर मैं उस काम को कर्तव्य समझ कर कर रहा हूँ तो उस कर्तव्य भाव में न मुझे पुण्य से और न ही पाप से कोई आसक्ति है। इस तरह ऐसे भाव से किये जाने से

कर्म में बन्धन समाप्त हो जाता है। भगवान को समर्पित होने से कर्म; कर्मयोग बन जाता है, गलती भी नष्ट हो जाती है और पुण्य भी नहीं आता। पाप और पुण्य दोनों ही कर्म से जोड़ते हैं।

एक बहुत अच्छी किताब "**कर्म का सिद्धान्त**", जिसमें कर्म की वैसे ही व्याख्या की गई है जैसे कि किसी साल में व्यक्ति जमा और घटाव से अपने बजट का व्याख्यान लिखता है। एक तरफ जमा और एक तरफ घटाव। एक तरफ खर्चा और एक तरफ आमदनी। जमा और घटाव के सन्तुलन से अगले साल का आरम्भिक शेष दिखाया जाता है, लेकिन कर्म के हिसाब में ऐसा नहीं होता। अगर कोई व्यक्ति अपने बहुत अच्छे कर्मों से पुण्य जमा करता है तो उसके लिए उतने पुण्य का अच्छा समय और बुरे कर्मों का बुरा समय पूरा ही भुगतना है। जैसे अगर ग्यारह सौ कर्म अच्छे किए तो ग्यारह सौ अच्छे पल और अगर चार सौ पाप किए तो चार सौ बुरे पल। पूरे पन्द्रह सौ पल जुड़ गए, जो कि मुक्ति की राह में अड़चन बने।

कर्तव्यपरायण होकर किए हुए किसी भी कार्य के पुण्यफल से भी और पाप के फल से भी मुक्ति मिलती है। फिर न वह पुण्य रहेंगे और न ही पाप। इस प्रकार फल से आसक्ति रखना, अगले जन्म में नए कर्मों से पुराने कर्मों को जोड़ देता है और आरम्भिक शेष में और ज्यादा बढ़ोतरी होती है, जबकि कर्तव्य समझकर किए गए कार्य से व्यक्ति का आरम्भिक शेष शून्य हो जाता है और आगे भी अगर वह कार्य के फल में आसक्ति नहीं रहता तो शून्य ही रहता है, जो उसे मुक्ति के मार्ग पर ले जाता है

2.51

**कर्मजं(म्) बुद्धियुक्ता हि, फलं(न्) त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः(फ्), पदं(ङ्) गच्छन्त्यनामयम्॥2.51॥**

कारण कि समतायुक्त बुद्धिमान साधक कर्मजन्य फल का त्याग करके जन्मरूप बन्धन से मुक्त होकर निर्विकार पद को प्राप्त हो जाते हैं।

विवेचन- व्यक्ति का किसी भी काम को करने से पहले यह सोचना कि इस काम को करने से मुझे क्या मिलेगा, यह काम मैं क्यों कर रहा हूँ, इस काम को करने से क्या होगा? यह पुण्य और पाप के भाव व्यक्ति को कर्म से जोड़ते हैं।

इस शरीर के अन्दर मैं हूँ, इस भाव से व्यक्ति का शरीर के बन्धन से मुक्त होना सम्भव नहीं है। कर्तव्य भाव से किया हुआ कर्म व्यक्ति के मन को शान्त कर देता है। प्रतिदिन हमें कोई ऐसा कार्य करना चाहिए जो कर्तव्य भाव से किया हो, जिसमें फल की इच्छा न रखी गई हो। कोई ऐसा काम जो कुशलता से आता हो, यह नहीं हो कि कुशलता किसी गलत काम में हो, वह योग नहीं है। योग अच्छे, कर्तव्यपूर्ण कार्य को कुशलता से करने में है।

कर्तव्य भाव से किया हुआ कार्य व्यक्ति को नर से नारायण बना देता है। किसी भी काम में फल की कामना नहीं रहनी चाहिए। वह कामना अगर ध्येय बन जाए तो व्यक्ति परम परमात्मा को प्राप्त कर सकता है और जन्म-मरण के बन्धन से छूट सकता है। कर्तव्य बोध से किए हुए किसी भी कार्य से आसक्ति पैदा नहीं होती और न ही पाप और पुण्य लगता है, जिससे व्यक्ति उस काम को करने से परम परमात्मा को प्राप्त होता है।

2.52

**यदा ते मोहकलिलं(म्), बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।
तदा गन्तासि निर्वेदं(म्), श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च॥2.52॥**

जिस समय तेरी बुद्धि मोहरूपी दलदल को भली भांति तर जायगी, उसी समय (तू) सुने हुए और सुनने में आने वाले (भोगों से) वैराग्य को प्राप्त हो जायगा।

विवेचन- स्थित-प्रज्ञ की बुद्धि मोह के दलदल से बाहर निकल जाती है और इस तरह से किसी भी फल की आसक्ति से जुड़ी नहीं रहती। बुद्धि जब ध्येय में लग जाती है तब किसी भी छोटे-मोटे आकर्षण से आकर्षित नहीं होती।

सोशल प्लेटफॉर्म पर आजकल लोग कितना समय बर्बाद कर देते हैं, पता ही नहीं चलता। यह ऐसे आकर्षण हैं जो बुद्धि को व्यस्त रखते हैं और इस तरह की व्यस्तता में कितना ही समय नष्ट होता है। जब व्यक्ति कामनाएँ करता है तो वह स्वार्थी हो जाता है और यही कामनाएँ जब विशाल हो जाती हैं तो वह ध्येय बन जाती हैं। अगर कामना अपने लिए है तो स्वार्थ है। परिवार के लिए है तो थोड़ी बड़ी है। समाज के लिए है तो और विशाल है। देश के लिए है तो उससे भी ज्यादा विशाल है, लेकिन अगर वह समस्त मानव जाति के लिए है तो वह ध्येय बन जाती है।

चित्त, बुद्धि ध्येय में लग जाए तो फिर वह मोह में नहीं फँसती। कोई छोटा बालक है, अगर पढ़ता है तो वह पढ़ाई ही उसका ध्येय है, चाहे वर्ल्ड कप चल रहा हो या कोई और आकर्षण हो। उसकी बुद्धि उस ध्येय में निश्चित, आत्मिक रूप से लगी रहती है। उसमें से बाहर निकल आए तो वह दलदल में फँसेगी। वह जो भी कर रहा है उसकी तरफ उसका पूरा ध्यान लगा रहना बहुत आवश्यक है, इस प्रकार वह वैराग्य को प्राप्त करता है। वैराग्य का अर्थ संन्यास नहीं है, वैराग्य का अर्थ है वि-रा-ग, आसक्ति से मुक्त।

2.53

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते, यदा स्थास्यति निश्चला। समाधावचला बुद्धिः(स), तदा योगमवाप्स्यसि॥2.53॥

जिस काल में शास्त्रीय मतभेदों से विचलित हुई तेरी बुद्धि निश्चल हो जायगी (और) परमात्मा में अचल (हो जायगी), उस काल में (तू) योग को प्राप्त हो जायगा।

विवेचन- भगवान कहते हैं, हे अर्जुन! कितने ही शास्त्र हैं, वेद हैं, जिनमें कितने उपाय बताए गए हैं। व्यक्ति इन सब उपायों की सहायता से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। वेदों के ज्ञान से परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। वेद हमारी माता है और कोई भी माता अपने बच्चों को गलत शिक्षा नहीं देती। परमात्मा को प्राप्त करने के लिए ध्येय में लीन बुद्धि चाहिए। कोई भी आसक्ति से परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता। ध्येय में लीन बुद्धिवाले व्यक्ति को कोई हिला नहीं सकता।

योग का अन्तिम लक्ष्य परमात्मा से एकरूपता है। योग का अर्थ है- जुड़ना। परमात्मा से एकरूप होना। योग करने वाले व्यक्ति की बुद्धि स्थिर हो जाती है, उसको अपने ध्येय के अलावा कुछ भी नज़र नहीं आता। यह बिल्कुल वैसे ही है जैसे अर्जुन अपना बाण चलाते समय केवल अपने निशाने पर ही ध्यान रखते हैं। गुरुजी ने पूछा क्या नज़र आ रहा है? तो अर्जुन ने कहा वृक्ष। गुरुजी ने फिर पूछा अब क्या नज़र आ रहा है? अर्जुन ने कहा शाखा। गुरुजी ने फिर पूछा? अर्जुन ने कहा पक्षी और जब अर्जुन ने कहा आँख, तो गुरुजी ने कहा अब बाण चला सकते हो। ध्येय के सिवाय स्थिर बुद्धि को कुछ भी नज़र नहीं आता और जिसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है वह परम परमात्मा को प्राप्त कर सकता है और उसके साथ एकरूप हो सकता है।

2.54

अर्जुन उवाच स्थितप्रज्ञस्य का भाषा, समाधिस्थस्य केशव। स्थितधीः(ख) किं(म्) प्रभाषेत, किमासीत व्रजेत किम्॥2.54॥

अर्जुन बोले - हे केशव ! परमात्मा में स्थित स्थिर बुद्धि वाले मनुष्य के क्या लक्षण होते हैं? वह स्थिर बुद्धि वाला मनुष्य कैसे बोलता है, कैसे बैठता है (और) कैसे चलता है अर्थात् व्यवहार करता है?

विवेचन- अर्जुन ने श्रीकृष्ण से पूछा, स्थिर बुद्धि के क्या लक्षण होते हैं? यह प्रश्न पूछ कर अर्जुन ने समस्त मानव जाति को कृतार्थ कर दिया। भगवान ने स्वयं अपने मुख से स्थितप्रज्ञ व्यक्ति के लक्षणों के बारे में बताया।

जैसे कोई डॉक्टर किसी व्यक्ति के लक्षण देखकर उसके लिए दवाई देता है, वैसे ही भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं अपने मुख से मानव जाति में रोल मॉडल, स्थित-प्रज्ञ व्यक्ति के बारे में बताया। जो व्यक्ति भगवान के साथ एकरूप हो सकता है, जो व्यक्ति परमपिता परमात्मा को प्रसन्न कर सकता है, ऐसे व्यक्ति के सद्गुणों की सूची कैसी होनी चाहिए, वह इस अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण ने बताया। जैसे भक्तों के लक्षण अध्याय बारह में दिए गए, ज्ञानी के लक्षण अध्याय तेरह में दिए गए, गुणातीत के लक्षण अध्याय चौदह में दिए, सद्गुणों की सम्पदा अध्याय सोलह में लिखी।

श्रीमद्भगवद्गीता मानव जाति के लिए एक ऐसा शास्त्र है जो परमपिता परमात्मा को प्राप्त करने के लिए अपने आप में एक उदाहरण है।

"सद्गुणों की साधना में ध्येय ज्योति नित जले", इस प्रार्थना में बोले गए बोल ही सद्गुणों को अर्जित करने के मार्ग के बारे में बताते हैं।

सन्त तुकाराम जी की जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए पंक्तियाँ है-

"रात दिना अमणि अन्तर बाह्य जगणि"।

सही क्या है, गलत क्या है। दिन-रात मन में, अन्तरात्मा में यह सङ्ग्राम चलता ही रहता है। मनुष्य का जन्म क्यों हुआ? और अगर यह जन्म हुआ है तो इसका कोई न कोई लक्ष्य तो होगा। भगवान ने मुझे किसी न किसी प्रयोजन के लिए ही पैदा किया होगा। यह सोचकर अपने ध्येय पर कार्यरत होना चाहिए।

2.55

**श्रीभगवानुवाच
प्रजहाति यदा कामान्, सर्वान्यार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः(स), स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥2.55॥**

श्रीभगवान् बोले - हे पृथानन्दन ! जिस काल में (साधक) मन में आयी सम्पूर्ण कामनाओं का भली भाँति त्याग कर देता है (और) अपने आपसे अपने आप में ही सन्तुष्ट रहता है, उस काल में (वह) स्थितप्रज्ञ कहा जाता है।

विवेचन- भगवान श्रीकृष्ण बहुत ही सुन्दर शब्दों में अर्जुन को उत्तर देते हैं कि कामनाओं का त्याग करने से चित्त स्थिर हो जाता है। सभी कामनाएँ ध्येय नहीं होती और ध्येय स्वार्थ प्रेरित नहीं होता बल्कि बहुत विशाल होता है। कामनाएँ स्वार्थ-पूर्ण होती हैं। जो मन में कामनाओं का ध्येय नहीं रखता वह शान्त और स्थित-प्रज्ञ होता है।

एक शब्द है **Ego** और एक शब्द है **Geo**. थोड़ा सा अक्षरों का हेर-फेर है लेकिन एक **self-centric** है और दूसरा **Geo-centric**. भगवान अपने रोल मॉडल से **Geo-centric** होने की आशा रखते हैं।

वसुधैव कुटुम्बकम्।

सारी पृथ्वी हमारा घर है, पृथ्वी का सम्पूर्ण विकास और भलाई ही हमारी प्रार्थना में होना चाहिए।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग् भवेत्।।

सन्त कबीर जी की बहुत सुन्दर पंक्तियाँ हैं-

**जब मैं था तब हरि नहीं अब हरि है मैं नहीं।
प्रेम गली अति सांकरी जामें दो न समाहीं॥**

प्रज्ञ बुद्धि वाला व्यक्ति बहुत ही विशाल हृदय रखता है। परमपिता परमात्मा में स्वयं को एकरूप करने के लिए अपने आप के भाव से बहुत ऊपर उठना होता है। वह दूसरों के दुःख में दुःखी होता है और दूसरों के सुख में सुखी होता है।

श्री रामकृष्ण परमहंस जी कैंसर से पीड़ित थे। उन्हें मिठाई खाना मना था क्योंकि उन्हें गले का कैंसर था, लेकिन उन्हें मिठाई बहुत पसन्द थी तो ठाकुर जी के लिए लोग मिठाई लेकर आते थे और अत्यन्त दुःखी होते थे कि वह मिठाई नहीं खा सकते। ठाकुर जी सबको बड़े प्रेम भाव से कहते थे कि मैं आप सबके मुख से खा ही तो रहा हूँ। स्थितप्रज्ञ व्यक्ति अपने आप में सबको देखता है और सब में अपने आप को देखता है।

2.56

**दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः(स), सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः(स), स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥2.56॥**

दुःखों की प्राप्ति होने पर जिसके मन में उद्वेग नहीं होता (और) सुखों की प्राप्ति होने पर जिसके मन में स्पृहा नहीं होती (तथा) जो राग, भय और क्रोध से सर्वथा रहित हो गया है, (वह) मननशील मनुष्य स्थिरबुद्धि कहा जाता है।

विवेचन- श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि संसार में रहते हुए सुख भी आता है और दुःख भी आता है। जो सुख में बहुत अधिक प्रसन्न नहीं होता और दुःख आने पर उद्वेग में नहीं आता वह योगी है। जो सुख की अपेक्षा नहीं करता और दुःख को भी अविनाशी नहीं मानता, यह दोनों भाव टिके नहीं रहते ऐसा मन में सोच कर न दुःख में दुःखी और न सुख में प्रसन्न होता है, ऐसा व्यक्ति स्थित प्रज्ञ है।

श्री लोकमान्य गङ्गाधर तिलक जी स्वतन्त्रता सङ्ग्राम में जुटे हुए थे। उन्हीं दिनों में वह एक केसरी नाम का वृत्त पत्र चलाते थे। उसी प्रयास के चलते वह अपना लेख लिखवा रहे थे, शिवराम जी पन्त लेख लिख रहे थे। वे घर के बाहर वाले कमरे में बैठे हुए थे। तभी कोई व्यक्ति आकर उन्हें घर के अन्दर से संदेश देकर गया। वह उठे और घर के अन्दर गए। वापस आकर पन्त जी को लेख लिखने के लिए कहने लगे। पन्त जी ने कहा कि ऐसा क्या संदेश है कि आप को तुरन्त जाना पड़ा, तो तिलक जी ने बताया कि उनका बेटा प्लेग से जीवन की जङ्ग हार चुका है। पन्त जी ने कहा कि केसरी का कल का अध्याय नहीं भी जाएगा तो कोई इतना आवश्यक नहीं है पर गङ्गाधर तिलक जी ने ऐसा करने से मना कर दिया।

भय, राग, द्वेष, क्रोध को जिसने जीत लिया वही स्थिर बुद्धि है। जो व्यक्ति अपने ध्येय का मनन करते हैं, वह मुनि हैं।

2.57

**यः(स) सर्वत्रानभिस्नेहः(स), तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि, तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥2.57॥**

सब जगह आसक्ति रहित हुआ जो मनुष्य उस-उस शुभ-अशुभ को प्राप्त करके न तो प्रसन्न होता है (और) न द्वेष करता है, उसकी बुद्धि स्थिर है।

विवेचन- स्थिर बुद्धि वाला व्यक्ति सूर्य और चन्द्रमा की तरह किसी के साथ भी अन्याय नहीं करता। सबके साथ समत्व का भाव रखता है। कोई भी उसके लिए अपना या पराया नहीं होता। उसकी समदृष्टि हमेशा बनी रहती है। शुभ व अशुभ में उसके लिए कोई अन्तर नहीं होता। समत्व में रहते हुए वह सुख दुःख सब कुछ स्वीकार करता है। सुख में बहुत ज्यादा सुखी और दुःख में बहुत ज्यादा उत्तेजित नहीं होता।

2.58

यदा संहरते चायं(ङ), कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः। इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः(स), तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥2.58॥

जिस तरह कछुआ अपने अंगों को सब ओर से समेट लेता है, (ऐसे ही) जिस काल में यह (कर्मयोगी) इन्द्रियों के विषयों से इन्द्रियों को (सब प्रकार से हटा लेता) है, तब उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है।

विवेचन- भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को कछुए का उदाहरण देकर समझाते हुए कहते हैं कि, जिस प्रकार कछुआ सङ्कट के समय में अपने सारे अङ्गों को सिकोड़ लेता है, इसी प्रकार एक स्थिर बुद्धि वाला व्यक्ति इन्द्रियों के विषयों को भी अन्तर्मुख कर लेता है। अन्तर्मुख होकर वह इन्द्रियों का ध्यान, ध्येय में लगा लेता है। उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है। किसी भी तरह के आकर्षण में अपनी इन्द्रियों को लगाने से बचता है।

एकादशी का व्रत रखने वाले फलाहार करते हैं लेकिन अगर उस व्रत के ध्यान में विषयों से ही निवृत्ति नहीं हो पाती तो उसमें इन्द्रियों का अन्तर्मुख न हो पाना उस व्रत के कर्तव्य को शून्य कर देता है।

2.59

विषया विनिवर्तन्ते, निराहारस्य देहिनः। रसवर्जं(म्) रसोऽप्यस्य, परं(न्) दृष्ट्वा निवर्तते ॥2.59॥

निराहारी (इन्द्रियों को विषयों से हटाने वाले) मनुष्य के (भी) विषय तो निवृत्त हो जाते हैं (पर) रस निवृत्त नहीं होता। (परन्तु) परमात्म तत्त्व का अनुभव होने से इस स्थितप्रज्ञ मनुष्य का तो रस भी निवृत्त हो जाता है अर्थात् उसकी संसार में रसबुद्धि नहीं रहती।

विवेचन- भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हैं कि स्थितप्रज्ञ व्यक्ति आहारों के रस से भी मुक्त हो जाता है। अन्तर्मुख होकर इन्द्रियों को आहारों के रस से मुक्त कर वह स्थिर बुद्धि हो जाता है।

एक कीर्तन मण्डली में गए हुए गायक बहुत अच्छा सत्सङ्ग करने के बाद जब दोबारा उस शहर में आमन्त्रित किए गए तो वे अत्यन्त खुश थे। उन्होंने कहा कि पिछली बार जब हम इस शहर में आए थे तो हमारा कीर्तन बहुत अच्छा गया था। उनमें से एक व्यक्ति कीर्तन मण्डली को खिलाए हुए भोजन और रबड़ी के स्वाद के बारे में बात करता है। उसका ध्यान कीर्तन में नहीं बल्कि कीर्तन मण्डली को खिलाये खाने में ज्यादा रहा। आसक्ति कभी भी स्थिर बुद्धि नहीं रहने देती।

तीन बन्दरों की कहानी- बुरा मत देखो, बुरा मत सुनो और बुरा मत कहो पर आधारित है परन्तु उतना ही पर्याप्त नहीं है।

गीता जी से हमें मन को भी विषय से हटाने के लिए शिक्षा मिलती है।

2.60

यततो ह्यपि कौन्तेय, पुरुषस्य विपश्चितः। इन्द्रियाणि प्रमाथीनि, हरन्ति प्रसभं(म्) मनः॥2.60॥

कारण कि हे कुन्तीनन्दन! (रसबुद्धि रहने से) यत्न करते हुए विद्वान् मनुष्य की भी प्रमथनशील इन्द्रियाँ (उसके) मन को बलपूर्वक हर लेती हैं।

विवेचन- मन को बहुत ही समझाने पर भी वह इन्द्रियों के वश में से बाहर नहीं निकल पाता। इन्द्रियाँ उसको अशान्त कर ही देती हैं। विषयों के आसक्ति में लगे रहने से मन को अशान्त करती रहती हैं। जैसे किसी व्यक्ति को अगर डायबिटीज है तो उसको मिठाई की याद आती ही रहती है। इन्द्रियों की विषयों में आसक्ति के कारण स्थिर बुद्धि नहीं हो पाती।

मराठी में एक कहावत है-

करतेनय व्रतनेय,
समझता है पर बनता नहीं।

वर्तनेय करतेनय,
बनता भी नहीं और समझना भी नहीं।

जैसे सिगरेट की डिब्बी के ऊपर लिखा रहता है कि सिगरेट का सेवन अत्यन्त हानिकारक है, जानलेवा भी हो सकता है, पर कोई भी उसको समझना ही नहीं चाहता क्योंकि वह इन्द्रिय आसक्ति से मुक्त होना ही नहीं चाहते।

ऋषि विश्वामित्र की बारह वर्ष की तपस्या को देखकर राजा इन्द्र परेशान हो गए और उन्होंने मेनका को उनकी तपस्या को भङ्ग करने के लिए भेजा, परन्तु वह अपने ध्येय के पक्के थे, दोबारा बारह वर्ष की तपस्या पर बैठ गए। इस बार उन्होंने रम्भा को भेजा। रम्भा ने उनका आश्रम साफ करना, पानी भरना, भोजन करना इन सब कामों व सेवा भाव से उनको प्रसन्न किया। एक दिन उसने कार्य नहीं किया तो विश्वामित्र जी क्रोधित हो गए जिससे उनका सारा तप भङ्ग हो गया, परन्तु वह अपने ध्येय के पक्के थे, पुनः तपस्या में लग गए और ब्रह्मर्षि बनने के अपने ध्येय को पूर्ण किया।

प्रार्थना के साथ इस सुन्दर विवेचन सत्र का समापन हुआ।

विचार मन्थन (प्रश्नोत्तर):-

प्रश्नकर्ता: पद्मावती जी

प्रश्न: योग: कर्मसु कौशलम् के बारे में कुछ और बताइये?

उत्तर: कर्तव्य भाव से कर्म को पूर्ण कौशलता से करने का प्रयास करना। ध्येय प्राप्ति के लिए, भगवान की प्राप्ति के लिए कुशलता से किए कर्म बन्धन से मुक्ति पाने का उपाय है।

प्रश्नकर्ता: गिरधारी लाल जी

प्रश्न: अनासक्त कर्म के जैसे अनासक्त भक्ति भी हो सकती है क्या?

उत्तर: भक्ति का अर्थ ही आसक्ति है इसलिये अनासक्त कर्म तो होता है पर अनासक्त भक्ति नहीं हो सकती।

प्रश्नकर्ता : अवध किशोर जी

प्रश्न: बिना ध्येय(Target)के कार्य कैसे होंगे?

उत्तर: एकदम सही बात है। ध्येय का निश्चय आवश्यक है। (Not Failure but Low Aim is Crime.) परिणाम से अनासक्त रहने के लिए कहा गया है।



हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

<https://vivechan.learngeeta.com/feedback/>

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!

हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचें। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

<https://gift.learngeeta.com/>

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करें।

<https://vivechan.learngeeta.com/>

॥ गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ॥

॥ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥